

## **Chapter सैंतीस**

### **केशी तथा व्योम असुरों का वध**

इस अध्याय में घोड़े के रूप में केशी असुर के वध, नारदमुनि द्वारा भगवान् कृष्ण की भावी लीलाओं का महिमा-गायन तथा कृष्ण द्वारा व्योमासुर-वध का वर्णन हुआ है।

कंस के आदेश से केशी असुर ने विशाल घोड़े का रूप धारण किया और वह व्रज में गया।

पहुँचते ही जब उसने जोर की हिनहिनाहट की तो सारे निवासी डर गये और श्रीकृष्ण का मुँह जोहने लगे। उस असुर को देखकर कृष्ण ने आगे बढ़कर उसे निकट आने के लिए ललकारा। केशी ने कृष्ण पर आक्रमण कर दिया और अपने अगले पाँवों से उन पर प्रहार करने की कोशिश की किन्तु भगवान् ने उसे पावों से पकड़ लिया, फिर उसे कई बार चारों ओर घुमाया और तब एक सौ धनुष-दूरी पर फेंक दिया। केशी कुछ समय तक अचेत पड़ा रहा। जब उसे चेत हुआ तो उसने खुले मुँह पुनः कृष्ण पर आक्रमण किया। तब भगवान् ने अपनी बाईं भुजा उस अश्व असुर के मुख में डाल दी और जब केशी ने उस भुजा को काटना चाहा तो वह उसे गर्म लोहे की फाल जैसी प्रतीत हुई। कृष्ण की भुजा फैलती गई जिससे असुर का दम घुटने लगा और उसने अत्यधिक वेदना के कारण अपने प्राण त्याग दिये। तब कृष्ण ने अपनी भुजा निकाल ली। वे शान्त खड़े रहे। देवताओं ने आकाश से उन पर पुष्प-वर्षा की और उनका यशोगान किया किन्तु उनके मुख से असुर मारने से कोई अहंकार लक्षित नहीं हो रहा था।

इस के तुरन्त बाद देवर्षि नारद कृष्ण के पास आये और भगवान् की भावी लीलाओं की प्रशंसा करते हुए उन्होंने अनेक प्रकार से उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् नारद उन्हें प्रणाम करके प्रस्थान कर गये।

एक दिन गाय चराते समय कृष्ण, बलराम तथा ग्वालबाल लुकाछिपी (आँख-मिचौनी) के खेल में व्यस्त थे। कुछ बालक भेड़ बने थे, कुछ चोर और कुछ गडरिये। चोरों द्वारा भेड़ें चुराने पर गडरिये भेड़ों को ढूँढ़ते थे। इस खेल का लाभ उठाकर कंस द्वारा भेजा गया व्योम नामक असुर ग्वाले का वेश बनाकर चोरों के समूह में जा मिला। वह एकसाथ कुछ ग्वालों का हरण करके उन्हें एक पर्वत-गुफा में फेंक आया और गुफा के द्वार को एक बड़े पत्थर से ढक दिया। क्रमशः व्योमासुर चार या पाँच ग्वालों को छोड़ शेष सारे ग्वालों को चुरा ले गया। जब कृष्ण ने उस असुर की करतूत देखी तो वे उसके पीछे दौड़े, उसे जा दबोचा और बलि के पशु की तरह उसे मार डाला।

श्रीशुक उवाच

केशी तु कंसप्रहितः खुरैर्महीं

महाहयो निर्जरयन्मनोजवः ।

सटावधूताभ्रविमानसङ्कुलं

कुर्वन्नभो हेषितभीषिताखिलः ॥ १ ॥

तं त्रासयन्तं भगवान्स्वगोकुलं

तद्धेषितैर्वालविघूर्णिताम्बुदम् ।  
 आत्मानमाजौ मृगयन्तमग्रणी-  
 रूपाह्वयत्स व्यनदन्मृगेन्द्रवत् ॥ २ ॥

### शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा; केशी—केशी नामक असुर; तु—और तब; कंस-प्रहितः—कंस द्वारा भेजा गया; खुरैः—खुरों से; महीम्—पृथ्वी को; महा-हयः—विशाल घोड़ा; निर्जरयन्—विदीर्ण करता; मनः—मन की तरह; जवः—गतिवान्; सटा—अपने अयालों से; अवधूत—बिखरे हुए; अभ्र—बादलों के साथ; विमान—तथा ( देवताओं के ) यानों; सङ्कुलम्—समूहित; कुर्वन्—करता हुआ; नभः—आकाश को; हेषित—अपनी हिनहिनाहट से; भीषित—डराता हुआ; अखिलः—हर एक; तम्—उसको; त्रासयन्तम्—डराता हुआ; भगवान्—भगवान्; स्व-गोकुलम्—अपने ग्वाल-ग्राम को; तत्-हेषितैः—उस हिनहिनाहट से; बाल—अपनी पूँछ के बालों से; विघूर्णित—हिलाया हुआ; अम्बुदम्—बादल; आत्मानम्—स्वयं; आजौ—युद्ध के लिए; मृगयन्तम्—ढूँढ़ते हुए; अग्र-नीः—आगे आकर; उपाह्वयत्—पुकारा; सः—उसने, केशी ने; व्यनदन्—गर्जना की; मृगेन्द्र-वत्—सिंह की तरह ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : कंस द्वारा भेजा गया केशी असुर व्रज में विशाल घोड़े के रूप में प्रकट हुआ । मन जैसे तेज वेग से दौड़ते हुए वह अपने खुरों से पृथ्वी को विदीर्ण करने लगा । उसकी गर्दन के बालों से सारे आकाश के बादल तथा देवताओं के विमान तितर-बितर हो गये । अपनी भारी हिनहिनाहट से उसने वहाँ पर उपस्थित सबों को भयभीत बना दिया ।

जब भगवान् ने देखा कि यह असुर किस तरह अपनी भयानक हिनहिनाहट से पूरे गोकुल गाँव को डरा रहा है और अपनी पूँछ से बादलों को हिलाये दे रहा है, तो वे केशी से सामना करने आगे आये । युद्ध के लिए तो केशी कृष्ण को ढूँढ़ ही रहा था अतः जब भगवान् उसके समक्ष खड़े हो गये और उन्होंने उसे पास आने के लिए ललकारा तो उस घोड़े ने सिंह जैसी गर्जना द्वारा उसका उत्तर दिया ।

स तं निशाम्याभिमुखो मुखेन खं  
 पिबन्निवाभ्यद्रवदत्यमर्षणः ।  
 जघान पद्भ्यामरविन्दलोचनं  
 दुरासदश्चण्डजवो दुरत्ययः ॥ ३ ॥

### शब्दार्थ

सः—वह, केशी; तम्—उन्हें, कृष्ण को; निशाम्य—देखकर; अभिमुखः—अपने सामने; मुखेन—अपने मुख से; खम्—आकाश को; पिबन्—पीता हुआ; इव—मानो; अभ्यद्रवत्—आगे दौड़ा; अति-अमर्षणः—अत्यन्त क्रुद्ध; जघान—आक्रमण कर दिया; पद्भ्याम्—अपने दो पाँवों से; अरविन्द-लोचनम्—कमल-नेत्र वाले प्रभु को; दुरासदः—पार पाना कठिन; चण्ड—प्रचण्ड; जवः—वेग वाला; दुरत्ययः—अजेय ।

भगवान् को अपने सामने खड़ा देखकर केशी अत्यन्त क्रुद्ध होकर अपना मुह बाये उनकी ओर दौड़ा मानो वह आकाश को निगल जायेगा । प्रचण्ड वेग से दौड़ते हुए उस अजेय तथा दुर्धर्ष

घोड़ा-असुर ने अपने अगले दो पाँवों से कमलनयन भगवान् पर प्रहार करने का प्रयत्न किया।

तद्वञ्चयित्वा तमधोक्षजो रुषा  
 प्रगृह्य दोर्भ्यां परिविध्य पादयोः ।  
 सावज्ञमुत्सृज्य धनुःशतान्तरे  
 यथोरगं तार्क्ष्यसुतो व्यवस्थितः ॥ ४ ॥

**शब्दार्थ**

तत्—वह; वञ्चयित्वा—बचाते हुए; तम्—उसको; अधोक्षजः—दिव्य प्रभु; रुषा—क्रोधपूर्वक; प्रगृह्य—पकड़कर; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; परिविध्य—चारों ओर घुमाकर; पादयोः—पाँव से पकड़कर; स-अवज्ञम्—घृणापूर्वक; उत्सृज्य—फेंकते हुए; धनुः—धनुष की लम्बाई के बराबर; शत—एक सौ; अन्तरे—दूरी पर; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप को; तार्क्ष्य—कर्म मुनि का; सुतः—पुत्र ( गरुड़ ); व्यवस्थितः—खड़े हो गये।

किन्तु दिव्य भगवान् ने केशी के प्रहार से अपने को बचा लिया और तब क्रुद्ध होकर अपनी भुजाओं से असुर के पैरों को पकड़कर उसे आकाश में चारों ओर घुमाया और एक सौ धनुष-दूरी पर घृणापूर्वक उसी तरह फेंक दिया जिस प्रकार गरुड़ किसी सर्प को फेंक दे। तब भगवान् कृष्ण वहीं खड़े हो गये।

सः लब्धसंज्ञः पुनरुत्थितो रुषा  
 व्यादाय केशी तरसापतद्धरिम् ।  
 सोऽप्यस्य वक्त्रे भुजमुत्तरं स्मयन्  
 प्रवेशयामास यथोरगं बिले ॥ ५ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वह, केशी; लब्ध—पाकर; संज्ञः—चेतना; पुनः—फिर से; उत्थितः—उठ खड़ा हुआ; रुषा—क्रोध में; व्यादाय—( अपना मुख ) फाड़ते हुए; केशी—केशी; तरसा—तेजी से; अपतत्—दौड़ा; हरिम्—कृष्ण की ओर; सः—वह, कृष्ण; अपि—तथा; अस्य—उसके; वक्त्रे—मुख में; भुजम्—अपनी भुजा; उत्तरम्—बाईं; स्मयन्—हँसने लगे; प्रवेशयाम् आस—भीतर डाल दिया; यथा—जिस तरह; उरगम्—साँप; बिले—छेद के भीतर ( घुसता है )।

पुनः चेतना लौट आने पर केशी क्रोधपूर्वक उठा। उसने अपना मुख पूरा खोल दिया और वह पुनः कृष्ण पर आक्रमण करने दौड़ा। किन्तु कृष्ण हँस दिये और अपनी बाईं भुजा उस घोड़े के मुँह में उसी सुगमता से डाल दी जिस तरह कोई साँप भूमि में बने छेद में घुसा जाता है।

दन्ता निपेतुर्भगवद्भुजस्पृश-  
 स्ते केशिनस्तप्तमयस्पृशो यथा ।  
 बाहुश्च तद्देहगतो महात्मनो  
 यथामयः संववृधे उपेक्षितः ॥ ६ ॥

**शब्दार्थ**

दन्ताः—दाँत; निपेतुः—बाहर निकल आये; भगवत्—भगवान् का; भुज—बाँह; स्पृशः—छूने से; ते—वे; केशिनः—केशी के; तप्त-मय—गर्म लाल (लोहा); स्पृशः—छूने से; यथा—जिस तरह; बाहुः—बाँह; च—तथा; तत्—उस केशी के; देह—शरीर में; गतः—घुसने पर; महा-आत्मनः—परमात्मा का; यथा—जिस तरह; आमयः—रुग्णावस्था (पेट की बीमारी), जलोदर; संवृधे—आकार में बढ़ गया; उपेक्षितः—तिरस्कृत।

भगवान् के बाहु का स्पर्श होते ही केशी के सारे दाँत गिर पड़े क्योंकि उनका बाहु उस असुर को पिघले लोहे के समान गर्म लग रहा था। तत्पश्चात् केशी के शरीर में भगवान् का बाहु अत्यधिक फैल गया जिस तरह उपेक्षा करने से जलोदर रोग बढ़ जाता है।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि यद्यपि भगवान् कृष्ण की भुजा नीले कमल से भी कोमल और शीतल है किन्तु केशी को वह अत्यधिक गर्म प्रतीत हुई मानो वज्र की बनी हो।

समेधमानेन स कृष्णबाहुना

निरुद्धवायुश्चरणांश्च विक्षिपन् ।

प्रस्विन्नगात्रः परिवृत्तलोचनः

पपात लण्डं विसृजन्क्षितौ व्यसुः ॥ ७ ॥

**शब्दार्थ**

समेधमानेन—बढ़ जाने से; सः—वह; कृष्ण-बाहुना—कृष्ण की भुजा से; निरुद्ध—रुक गई; वायुः—श्वास लेना; चरणान्—पैर; च—तथा; विक्षिपन्—इधर-उधर पटकता; प्रस्विन्न—पसीने से लथपथ; गात्रः—शरीर; परिवृत्त—उलटाते हुए; लोचनः—आँखें; पपात—गिर पड़ा; लण्डम्—मल; विसृजन्—निकालता हुआ; क्षितौ—पृथ्वी पर; व्यसुः—प्राणरहित।

ज्योंही कृष्ण की फैलती भुजा ने केशी के श्वास को पूरी तरह अवरुद्ध कर दिया, वह अपने पैर पटकने लगा, उसका शरीर पसीने से लथपथ हो गया और उसकी आँखें उलट गईं। तब उस असुर ने मल त्याग दिया और भूमि पर गिर कर निष्प्राण हो गया।

तद्देहतः कर्कटिकाफलोपमाद्

व्यसोरपाकृष्य भुजं महाभुजः ।

अविस्मितोऽयत्नहतारिकः सुरैः

प्रसूनवर्षैर्वर्षद्विरीडितः ॥ ८ ॥

**शब्दार्थ**

तत्-देहतः—केशी के शरीर से; कर्कटिका-फल—कर्कटिका फल, ककड़ी; उपमात्—के सदृश; व्यसोः—जिससे प्राण-वायु निकल चुकी थी; अपाकृष्य—निकालकर; भुजम्—अपनी बाँह को; महा-भुजः—बलिष्ठ भुजाओं वाले प्रभु; अविस्मितः—बिना किसी गर्व के; अयत्न—बिना प्रयास के; हत—मारकर; अरिकः—अपने शत्रु; सुरैः—देवताओं द्वारा; प्रसून—फूलों की; वर्षैः—वर्षा से; वर्षद्विः—वर्षा करते हुए; ईडितः—पूजित।

महाबाहु कृष्ण ने अपनी बाँह केशी के उस शरीर से निकाल ली जो अब एक लम्बी ककड़ी

जैसा प्रतीत हो रहा था। अपने शत्रु को बिना प्रयास के ही मारने के बाद किसी प्रकार का गर्व दिखलाये बिना भगवान् ने ऊपर से फूलों की वर्षा के रूप में की गई देवताओं की पूजा स्वीकार की।

देवर्षिरुपसङ्गम्य भागवतप्रवरो नृप ।  
कृष्णमक्लिष्टकर्माणं रहस्येतदभाषत ॥ ९ ॥

#### शब्दार्थ

देव-ऋषिः—देवताओं में से ऋषि ( नारदमुनि ); उपसङ्गम्य—पास आकर; भागवत—भगवद्भक्तों के; प्रवरः—श्रेष्ठ; नृप—हे राजा ( परीक्षित ); कृष्णम्—कृष्ण को; अक्लिष्ट—बिना कष्ट के; कर्माणम्—जिसके कर्म; रहसि—एकान्त में; एतत्—यह; अभाषत—कहा।

हे राजन्, तत्पश्चात् देवर्षि नारद भगवान् कृष्ण के पास एकान्त स्थान में गये। इन महाभागवत ने बिना किसी प्रयास के लीला करने वाले भगवान् से इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : कंस से बातें कहकर नारद भगवान् कृष्ण के पास गये। भगवान् की वृन्दावन लीलाएँ समाप्तप्राय थीं और नारद मथुरा में होने वाली लीलाओं को देखना चाहते थे।

कृष्ण कृष्णाप्रमेयात्मन्योगेश जगदीश्वर ।  
वासुदेवाखिलावास सात्वतां प्रवर प्रभो ॥ १० ॥  
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैधसाम् ।  
गूढो गुहाशयः साक्षी महापुरुष ईश्वरः ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

कृष्ण कृष्ण—हे कृष्ण, हे कृष्ण; अप्रमेय-आत्मन्—हे अगाध आत्मा; योग-ईश—हे समस्त योगशक्ति के स्रोत; जगत्-ईश्वर—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; वासुदेव—हे वासुदेव-पुत्र; अखिल-आवास—हे सबों के आश्रय; सात्वताम्—यदुकुल के; प्रवर—हे श्रेष्ठ; प्रभो—हे प्रभु; त्वम्—तुम; आत्मा—परमात्मा; सर्व—समस्त; भूतानाम्—जीवों के; एकः—एकमात्र; ज्योतिः—अग्नि; इव—सदृश; एधसाम्—समिधा में; गूढः—छिपी; गुहा—हृदय रूपी गुफा में; शयः—बैठे हुए, स्थित; साक्षी—गवाह; महा-पुरुषः—भगवान्; ईश्वरः—परमनियन्ता।

[ नारदमुनि ने कहा ] : हे कृष्ण, हे कृष्ण, हे अनन्त प्रभु, हे समस्त योगशक्तियों के स्रोत, हे ब्रह्माण्ड के स्वामी, हे समस्त जीवों के आश्रय तथा यदुश्रेष्ठ वासुदेव, हे प्रभु, आप समस्त जीवों के परमात्मा हैं और हृदय की गुफा में उसी तरह अदृश्य होकर बैठे हुए हैं जिस तरह सुलगती हुई लकड़ी के भीतर अग्नि सुप्त रहती है। आप सबों के भीतर साक्षी स्वरूप, परम पुरुष तथा सर्वनियन्ता देव हैं।

आत्मनात्माश्रयः पूर्वं मायया ससृजे गुणान् ।  
तैरिदं सत्यसङ्कल्पः सृजस्यत्स्यवसीश्वरः ॥ १२ ॥

**शब्दार्थ**

आत्मना—अपनी निजी शक्ति से; आत्म—आत्मा के; आश्रयः—शरण; पूर्वम्—पहले; मायया—अपनी सृजन-शक्ति द्वारा; ससृजे—उत्पन्न किया; गुणान्—प्रकृति के मूलभूत गुणों को; तैः—उनके माध्यम से; इदम्—यह ( ब्रह्माण्ड ); सत्य—तथ्य रूप में अनुभवगम्य; सङ्कल्पः—जिसकी इच्छाएँ; सृजसि—उत्पन्न करते हो; अत्सि—संहार करते हो; अवसि—पालन करते हो; ईश्वरः—नियन्ता।

आप समस्त जीवों के आश्रय हैं और परमनियन्ता होने के कारण अपनी इच्छाशक्ति से अपनी सारी इच्छाएँ पूरी करते हैं। अपनी निजी सृजन-शक्ति से आपने प्रारम्भ में प्रकृति के आदि गुणों को प्रकट किया और आप उन्हीं के माध्यम से इस ब्रह्माण्ड का सृजन, पालन तथा विनाश करते हैं।

स त्वं भूधरभूतानां दैत्यप्रमथरक्षसाम् ।  
अवतीर्णो विनाशाय साधूनां रक्षणाय च ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**

सः—वह; त्वम्—साक्षात् आप; भू-धर—राजाओं के रूप में; भूतानाम्—प्रकट होने वाले; दैत्य-प्रमथ-रक्षसाम्—विभिन्न प्रकार के असुरों के; अवतीर्णः—अवतीर्ण हुए हो; विनाशाय—विनाश के लिए; साधूनाम्—सन्त पुरुषों की; रक्षणाय—रक्षा के लिए; च—तथा।

आप ही वह स्रष्टा हैं, जो अपने को राजा मानने वाले दैत्यों, प्रमथों तथा राक्षसों का विनाश करने के लिए तथा सन्त पुरुषों की रक्षा करने के लिए अब इस धरा पर अवतीर्ण हुए हैं।

दिष्ट्या ते निहतो दैत्यो लीलयायं हयाकृतिः ।  
यस्य हेषितसन्नस्तास्त्यजन्त्यनिमिषा दिवम् ॥ १४ ॥

**शब्दार्थ**

दिष्ट्या—( हमारे ) सौभाग्य से; ते—तुम्हारे द्वारा; निहतः—मारा गया; दैत्यः—असुर; लीलया—खेल-खेल में; अयम्—यह; हय-आकृतिः—घोड़े की आकृति वाला; यस्य—जिसकी; हेषित—हिनहिनाहट से; सन्नस्ताः—भयभीत; त्यजन्ति—छोड़ देते हैं; अनिमिषाः—देवतागण; दिवम्—स्वर्ग को।

यह घोड़े की आकृति वाला असुर इतना आतंक मचाये हुए था कि उसकी हिनहिनाहट से देवताओं ने भयभीत होकर अपने स्वर्ग के राज्य को छोड़ दिया था। किन्तु हमारे सौभाग्य से आपने खेल खेल में ही उसे मार डाला है।

चाणूरं मुष्टिकं चैव मल्लानन्यांश्च हस्तिनम् ।  
कंसं च निहतं द्रक्ष्ये परश्वोऽहनि ते विभो ॥ १५ ॥

तस्यानु शङ्खयवनमुराणां नरकस्य च ।  
 पारिजातापहरणमिन्द्रस्य च पराजयम् ॥ १६ ॥  
 उद्वाहं वीरकन्यानां वीर्यशुल्कादिलक्षणम् ।  
 नृगस्य मोक्षणं शापाद्द्वारकायां जगत्पते ॥ १७ ॥  
 स्यमन्तकस्य च मणोरादानं सह भार्यया ।  
 मृतपुत्रप्रदानं च ब्राह्मणस्य स्वधामतः ॥ १८ ॥  
 पौण्ड्रकस्य वधं पश्चात्काशिपुर्याश्च दीपनम् ।  
 दन्तवक्रस्य निधनं चैद्यस्य च महाक्रतौ ॥ १९ ॥  
 यानि चान्यानि वीर्याणि द्वारकामावसम्भवान् ।  
 कर्ता द्रक्ष्याम्यहं तानि गेयानि कविभिर्भुवि ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

चाणूरम्—चाणूर को; मुष्टिकम्—मुष्टिक को; च—तथा; एव—भी; मल्लान्—कुशती लड़ने वाले, पहलवानों को; अन्यान्—अन्य; च—तथा; हस्तिनम्—हाथी ( कुवलयापीड ) को; कंसम्—कंस को; च—तथा; निहतम्—मारा गया; द्रक्ष्ये—देखूँगा; पर-श्वः—परसों; अहनि—उस दिन; ते—तुम्हारे द्वारा; विभो—हे सर्वशक्तिमान; तस्य अनु—उसके बाद; शङ्ख-यवन-मुराणाम्—शंख ( पञ्चजन ), कालयवन तथा मुर नामक असुरों का; नरकस्य—नरकासुर का; च—भी; पारिजात—स्वर्ग के पारिजात पुष्प का; अपहरणम्—चुराया जाना; इन्द्रस्य—इन्द्र की; च—तथा; पराजयम्—हार; उद्वाहम्—विवाह; वीर—वीर राजाओं का; कन्यानाम्—कन्याओं के; वीर्य—आपके पराक्रम से; शुल्क—दहेज; आदि—इत्यादि; लक्षणम्—लक्षणों से युक्त; नृगस्य—राजा नृग का; मोक्षणम्—मोक्ष; शापात्—अपने शाप से; द्वारकायाम्—द्वारका नगरी में; जगत्-पते—हे ब्रह्माण्ड के स्वामी; स्यमन्तकस्य—स्यमन्तक नामक; च—तथा; मणेः—मणि का; आदानम्—ग्रहण किया जाना; सह—के साथ; भार्यया—पत्नी ( जाम्बवती ) के साथ; मृत—मरे हुए; पुत्र—बेटे का; प्रदानम्—लाकर देना; च—तथा; ब्राह्मणस्य—ब्राह्मण के; स्व-धामतः—अपने धाम ( मृत्युधाम ) से; पौण्ड्रकस्य—पौण्ड्रक का; वधम्—मारा जाना; पश्चात्—उसके बाद; काशि-पुर्याः—काशी नगरी ( बनारस ) के; च—तथा; दीपनम्—दहन; दन्तवक्रस्य—दन्तवक्र का; निधनम्—मरण; चैद्यस्य—चैद्य ( शिशुपाल ) का; च—तथा; महा-क्रतौ—महायज्ञ ( महाराज युधिष्ठिर का राजसूय यज्ञ ) के समय; यानि—जो; च—तथा; अन्यानि—अन्य; वीर्याणि—बड़े बड़े कौशल; द्वारकाम्—द्वारका में; आवसन्—रहते हुए; भवान्—आप; कर्ता—सम्पन्न करने जा रहे हैं; द्रक्ष्यामि—देखूँगा; अहम्—मैं; तानि—उनको; गेयानि—गाये जाने के लिए; कविभिः—कवियों द्वारा; भुवि—इस पृथ्वी पर ।

हे सर्वशक्तिमान विभो, दो ही दिनों में मैं आपके हाथों चाणूर, मुष्टिक तथा अन्य पहलवानों के साथ साथ कुवलयापीड तथा राजा कंस की भी मृत्यु होते देखूँगा। इसके बाद मैं कालयवन, मुर, नरक तथा शंख असुर को आपके द्वारा मारा जाते देखूँगा। मैं आपको पारिजात पुष्प चुराते और इन्द्र को पराजित करते देखूँगा। तत्पश्चात् अपने पराक्रम से मूल्य चुकाते हुए वीर राजाओं की अनेक कन्याओं के साथ आपको विवाह करते देखूँगा। तब हे ब्रह्माण्डपति, आप द्वारका में राजा नृग का शाप से उद्धार करेंगे और एक अन्य पत्नी के साथ साथ आप अपने लिए स्यमन्तक मणि भी लेंगे। आप ब्राह्मण के मृत पुत्र को अपने दास यमराज के धाम से वापस लायेंगे और उसके बाद आप पौण्ड्रक का वध करेंगे तथा काशी नगरी को जला देंगे और राजसूय यज्ञ के समय दन्तवक्र तथा चेदिराज का संहार करेंगे। मैं इन सब वीरतापूर्ण लीलाओं को तो देखूँगा



ही, साथ ही द्वारका में अपने वास-काल में आप जो अन्य अनेक लीलाएँ करेंगे उन्हें भी देखूँगा।  
ये सारी लीलाएँ दिव्य कवियों के गीतों में इस धरा पर गाई जाती हैं।

अथ ते कालरूपस्य क्षपयिष्णोरमुष्य वै ।  
अक्षौहिणीनां निधनं द्रक्ष्याम्यर्जुनसारथेः ॥ २१ ॥

**शब्दार्थ**

अथ—तब; ते—आपके द्वारा; काल-रूपस्य—काल का रूप धारण करने वाले; क्षपयिष्णोः—संहार करने की इच्छा करने वाला; अमुष्य—इस जगत ( के भार ) का; वै—निस्सन्देह; अक्षौहिणीनाम्—सम्पूर्ण सेनाओं का; निधनम्—विनाश; द्रक्ष्यामि—देखूँगा; अर्जुन सारथेः—अर्जुन के सारथी द्वारा।

तत्पश्चात् मैं आपको साक्षात् काल के रूप में प्रकट होते, अर्जुन के सारथी के रूप में सेवा करते तथा धरती का भार उतारने के लिए सैनिकों की समस्त सेनाओं का विनाश करते देखूँगा।

विशुद्धविज्ञानघनं स्वसंस्थया  
समाप्तसर्वार्थममोघवाञ्छितम् ।  
स्वतेजसा नित्यनिवृत्तमाया-  
गुणप्रवाहं भगवन्तमीमहि ॥ २२ ॥

**शब्दार्थ**

विशुद्ध—पूर्णरूपेण शुद्ध; विज्ञान—आध्यात्मिक भिन्नता; घनम्—से पूर्ण; स्व-संस्थया—अपने मूल रूप में; समाप्त—पहले ही पूर्ण; सर्व—समस्त; अर्थम्—उद्देश्यों में; अमोघ—कभी उद्विग्न न होने वाले; वाञ्छितम्—जिनकी इच्छाएँ; स्व-तेजसा—अपनी ही शक्ति से; नित्य—शाश्वत; निवृत्त—विरक्त; माया—भौतिक शक्ति या माया का; गुण—प्रकट गुणों के; प्रवाहम्—प्रवाह से; भगवन्तम्—भगवान्; ईमहि—शरण आने दें।

हे भगवान् हमें अपनी शरण में आने दें। आप शुद्ध आध्यात्मिक भिन्नता से परिपूर्ण हैं और अपने मूल स्वरूप में सदैव स्थित रहते हैं। चूँकि आपकी इच्छा को कभी नकारा नहीं जा सकता, आपने पहले ही यथासम्भव इच्छित वस्तुएँ प्राप्त कर ली हैं और अपनी आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा आप माया के गुण प्रवाह से सतत पृथक् रहते हैं।

त्वामीश्वरं स्वाश्रयमात्ममायया  
विनिर्मिताशेषविशेषकल्पनम् ।  
क्रीडार्थमद्यात्तमनुष्यविग्रहं  
नतोऽस्मि धुर्यं यदुवृष्णिसात्वताम् ॥ २३ ॥

**शब्दार्थ**

त्वाम्—तुमको; ईश्वरम्—परमनियन्ता को; स्व-आश्रयम्—आत्म-निर्भर; आत्म—निजी; मायया—सृजन-शक्ति द्वारा; विनिर्मित—बनाया हुआ; अशेष—असीम; विशेष—विशिष्ट; कल्पनम्—व्यवस्था; क्रीड—खेल के; अर्थम्—हेतु; अद्य—

अब; आत्त—लिया हुआ; मनुष्य—मनुष्यों के बीच; विग्रहम्—लड़ाई; नतः—नत; अस्मि—हूँ; धुर्यम्—महानतम, शिरोमणि; यदु-वृष्णि-सात्वताम्—यदु, वृष्णि तथा सात्वत कुलों के ।

हे आत्म-निर्भर परमनियन्ता, मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आपने अपनी शक्ति से इस ब्रह्माण्ड की असीम विशिष्ट व्यवस्था की रचना की है। अब आप यदुओं, वृष्णियों तथा सात्वतों के बीच महानतम वीर के रूप में प्रकट हुए हैं और आपने मानवीय युद्ध में भाग लेने का निर्णय किया है।

श्रीशुक उवाच

एवं यदुपतिं कृष्णं भागवतप्रवरो मुनिः ।

प्रणिपत्याभ्यनुज्ञातो ययौ तद्दर्शनोत्सवः ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्रीशुकदेव ने कहा; एवम्—इस प्रकार; यदु-पतिम्—यदुओं में प्रमुख; कृष्णम्—कृष्ण को; भागवत-भक्तों के; प्रवरः—परम विख्यात; मुनिः—नारदमुनि ने; प्रणिपत्य—सादर नमस्कार करके; अभ्यनुज्ञातः—विदा किये गये; ययौ—चला गया; तत्—उन कृष्ण के; दर्शन—दर्शन करके; उत्सवः—परम हर्ष का अनुभव करते हुए ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस प्रकार यदुवंश के प्रधान भगवान् कृष्ण को सम्बोधित करने के बाद नारद ने झुककर सादर प्रणाम किया। तत्पश्चात् उस मुनियों में महान् तथा भक्तों में विख्यात नारद ने भगवान् से विदा ली और उनका साक्षात् दर्शन करने से उत्पन्न परम हर्ष का अनुभव करते हुए चले गये।

भगवानपि गोविन्दो हत्वा केशिनमाहवे ।

पशूनपालयत्पालैः प्रीतैर्ब्रजसुखावहः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

भगवान्—भगवान्; अपि—तथा; गोविन्दः—गोविन्द; हत्वा—मारकर; केशिनम्—केशी असुर को; आहवे—युद्ध में; पशून्—पशुओं का; अपालयत्—चराने लगे; पालैः—गवालबालों के साथ; प्रीतैः—अत्यन्त प्रसन्न; ब्रज—वृन्दावन के वासियों को; सुख—सुख; आवहः—लाने वाले ।

युद्ध में असुर केशी को मार डालने के बाद भगवान् कृष्ण अपने प्रमुदित ग्वालमित्रों के साथ गौवों तथा अन्य पशुओं को चराते रहे। इस तरह उन्होंने वृन्दावन के समस्त वासियों को हर्ष-उल्लास पहुँचाया।

एकदा ते पशून्यालाश् चारयन्तोऽद्रिसानुषु ।

चक्रुर्निलायनक्रीडाश्वोरपालापदेशतः ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

एकदा—एक बार; ते—उन; पशून्—पशुओं को; पालाः—ग्वालबालों ने; चारयन्तः—चराते हुए; अद्रि—पर्वत के; सानुषु—ढलानों पर; चक्रुः—खेला; निलायन—लुकाछिपी; क्रीडाः—खेल; चोर—चोरों के; पाल—तथा रक्षकों के; अपदेशतः—अभिनय करते हुए।

एक दिन पर्वत की ढलानों पर अपने पशु चराते हुए ग्वालबालों ने आपस में प्रतिद्वन्द्वी चोरों तथा मवेशि-पालकों ( गड़ेरियों ) का अभिनय करते हुए लुकाछिपी का खेल खेला।

तत्रासन्कतिचिच्चोराः पालाश्च कतिचित्रूप ।  
मेषायिताश्च तत्रैके विजहुरकुतोभयाः ॥ २७ ॥

शब्दार्थ

तत्र—उसमें; आसन्—थे; कतिचित्—कुछ; चोराः—चोर; पालाः—चराने वाले, पालक; च—तथा; कतिचित्—कुछ; नृप—हे राजा ( परीक्षित ); मेषायिताः—भेड़ का वेश बनाकर; च—तथा; तत्र—वहाँ; एके—कुछ ने; विजहुः—खेल खेला; अकुतः-भयाः—बिना किसी भय के।

हे राजन्, उस खेल में कुछ ग्वाले चोर बने, कुछ गड़रिये तथा अन्य भेड़ बने। वे किसी संकट के भय के बिना सुखचैन से अपना खेल खेल रहे थे।

मयपुत्रो महामायो व्योमो गोपालवेषधृक् ।  
मेषायितानपोवाह प्रायश्चोरायितो बहून् ॥ २८ ॥

शब्दार्थ

मय-पुत्रः—मय असुर का पुत्र; महा मायः—बलशाली जादूगर; व्योमः—व्योम नामक; गोपाल—ग्वालबाल का; वेष—पहनावा, वेष; धृक्—धारण करके; मेषायितान्—भेड़ बनने वालों को; अपोवाह—भगा ले गया; प्रायः—लगभग सारे; चोरायितः—चोर बनकर खेलने के बहाने; बहून्—अनेक।

तब व्योम नामक एक शक्तिशाली जादूगर, जो असुर मय का पुत्र था, एक ग्वालबाल के वेश में वहाँ प्रकट हुआ। वह चोर के रूप में खेल में सम्मिलित होने का बहाना करते हुए, भेड़ बनने वाले अधिकांश ग्वालबालों को चुराने के लिए आगे बढ़ा।

गिरिदर्या विनिक्षिप्य नीतं नीतं महासुरः ।  
शिलया पिदधे द्वारं चतुःपञ्चावशेषिताः ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

गिरि—पर्वत की; दर्याम्—गुफा में; विनिक्षिप्य—फेंक कर; नीतम् नीतम्—क्रमशः ला लाकर; महा-असुरः—महान् असुर; शिलया—पत्थर से; पिदधे—बन्द कर दिया; द्वारम्—द्वार को; चतुः-पञ्च—चार या पाँच; अवशेषिताः—बचे रहे।

उस महा असुर ने धीरे धीरे अधिकाधिक ग्वालों का अपहरण कर लिया और उन्हें एक पर्वत-गुफा में ले जाकर फेंक दिया तथा उसके द्वार को एक बड़े पत्थर से बन्द कर दिया। अन्त

में केवल चार-पाँच बालक बचे जो खेल में भेड़ बने थे।

तस्य तत्कर्म विज्ञाय कृष्णः शरणदः सताम् ।  
गोपान्नयन्तं जग्राह वृकं हरिरिवौजसा ॥ ३० ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—उसका, व्योमासुर का; तत्—वह; कर्म—काम; विज्ञाय—पूरी तरह जानकर; कृष्णः—कृष्ण ने; शरण—शरण के;  
दः—दाता; सताम्—साधु भक्तों को; गोपान्—गवालबालों को; नयन्तम्—ले जाने वाले को; जग्राह—पकड़ लिया; वृकम्—  
भेड़िये को; हरिः—सिंह; इव—सदृश; ओजसा—बलपूर्वक।

समस्त सन्त भक्तों को शरण देने वाले भगवान् कृष्ण अच्छी तरह जान गये कि व्योमासुर कर क्या रहा है। जिस तरह कोई सिंह भेड़िये को दबोच लेता है उसी तरह कृष्ण ने उस असुर को जब वह अन्य गवालबालों को लिये जा रहा था बलपूर्वक धर दबोचा।

स निजं रूपमास्थाय गिरीन्द्रसदृशं बली ।  
इच्छन्विमोक्तुमात्मानं नाशक्नोद्ग्रहणातुरः ॥ ३१ ॥

#### शब्दार्थ

सः—वह असुर; निजम्—अपने मूल; रूपम्—रूप को; आस्थाय—धारण करके; गिरि-इन्द्र—राजसी पर्वत; सदृशम्—के  
सदृश; बली—शक्तिशाली; इच्छन्—चाहते हुए; विमोक्तुम्—मुक्त करने के लिए; आत्मानम्—स्वयं को; न अशक्नोत्—वह  
समर्थ नहीं था; ग्रहण—बलपूर्वक पकड़े जाने से; आतुरः—अशक्त हुआ।

वह असुर अपने मूल रूप में परिणत होकर विशाल पर्वत के समान बड़ा तथा बली बन गया। किन्तु वह कठोर प्रयास के बावजूद अपने को छुड़ा न पाया क्योंकि भगवान् की मजबूत पकड़ में होने से वह अपनी शक्ति खो चुका था।

तं निगृह्याच्युतो दोर्भ्यां पातयित्वा महीतले ।  
पश्यतां दिवि देवानां पशुमारममारयत् ॥ ३२ ॥

#### शब्दार्थ

तम्—उसको; निगृह्य—मजबूती से पकड़कर; अच्युतः—भगवान् कृष्ण ने; दोर्भ्याम्—अपनी भुजाओं से; पातयित्वा—गिरा  
कर; मही-तले—पृथ्वी पर; पश्यताम्—देखते देखते; दिवि—स्वर्गलोक में; देवानाम्—देवताओं के; पशु-मारम्—जिस तरह  
बलि-पशु का वध किया जाता है; अमारयत्—उसे मार डाला।

भगवान् अच्युत ने व्योमासुर को अपनी बाँहों के बीच में जकड़ कर पृथ्वी पर पदक दिया। तब स्वर्ग से देवताओं के देखते देखते कृष्ण ने उसे उसी तरह मार डाला जिस तरह कोई बलि-पशु का वध करता है।

तात्पर्य : आचार्यगण बतलाते हैं कि बलि-पशु को गला घोटकर मारा जाता था।

गुहापिधानं निर्भिद्य गोपान्निःसार्य कृच्छ्रतः ।  
स्तूयमानः सुरैर्गोपैः प्रविवेश स्वगोकुलम् ॥ ३३ ॥

**शब्दार्थ**

गुहा—गुफा के; पिधानम्—अवरोध को; निर्भिद्य—तोड़कर; गोपान्—ग्वालबालों को; निःसार्य—बाहर निकालकर;  
कृच्छ्रतः—भयानक जगह से; स्तूयमानः—प्रशंसित होकर; सुरैः—देवताओं द्वारा; गोपैः—तथा ग्वालबालों द्वारा; प्रविवेश—  
प्रवेश किया; स्व—अपने; गोकुलम्—ग्वाल-ग्राम में।

तत्पश्चात् कृष्ण ने गुफा के दरवाजे को अवरुद्ध करने वाले शिलाखण्ड को चूर चूर कर दिया और बन्दी बनाये गये ग्वालबालों को वे सुरक्षित स्थान पर ले आये। इसके बाद देवताओं तथा ग्वालों द्वारा उनका यशोगान होने लगा और वे अपने ग्वाल-ग्राम, गोकुल, लौट गए।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “केशी तथा व्योम असुरों का वध” नामक सैंतीसवें अध्याय के श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।